Dr. Vandana Suman
Professor
Dept. of Philosophy
H. D. Jain College, Ara
UG - Sem - IV - MJC-07
Basic Concepts of Philosophy

"Nature of Philosophy and Darshan Shastra."

('दर्शन' का स्वरूप और दर्शनशास्त्र)

'दर्शन' शब्द की निष्पत्ति 'दृश्' धातु से करण अर्थ में 'ल्युट्' प्रत्यय लगाकर हुई है, जिसका अर्थ होता है 'जिसके द्वारा देखा जाय' (दृश्यते अनेन इति)। इस मत में 'दर्शन' शब्द का अर्थ हुआ 'जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाय'।

'छान्दोग्य उपनिषद्' में 'दृश्' का 'आत्मदर्शन' के अर्थ में प्रयोग करते हुए लिखा गया है 'आत्मा वाऽरे द्रष्टव्यः'। मनु और याज्ञवल्क्य की स्मृतियों में उपनिषदों के 'आत्मज्ञान' को 'सम्यग्दर्शन' तथा 'आत्मदर्शन' के अर्थ में लिया गया है। अपने सच्चे स्वरूप का दर्शन करना या अपने सच्चे स्वरूप को पहचानना ही 'आत्मदर्शन' या 'सम्यग्दर्शन' है। बौद्ध न्याय में इसको 'सम्यग्दृष्टि' और जैन न्याय में 'सम्यग्दर्शन' कहा गया है।

इस 'सम्यग्दर्शन' या 'आत्मदर्शन' के लिये समदृष्टि का होना आवश्यक है। सब धर्मों, मतों, सम्प्रदायों में समन्वय स्थापित करके इनको एक ही रूप में देखने का नाम ही 'समदृष्टि' या 'समदर्शिता' है। सर्वत्र एक ही आशय को देखना और सब में एक ही परमेश्वर का दर्शन करना, यही यथार्थ 'दर्शन' है। यह 'संसार' क्या है, ये जीवन-मृत्यु के बंधन क्या हैं, इस सुख-दुःख का सार

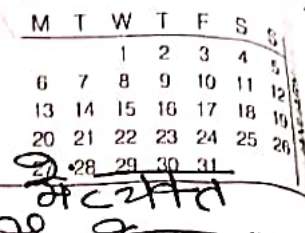

क्या है, मैं क्या हूँ, इन सभी के मूल में स्थित रहस्य को समझ लेना ही दर्शन है। ये अनन्त दृश्य जब एक ही दृष्टा में दिखायी देने लगें; 'मैं' ही जब सर्वत्र दिखायी देने लगे और वह दुःख जब परम शान्ति में बदला हुआ जान पड़े, इसी को वास्तविक 'देखना' (दर्शन) कहते हैं।

दर्शनशास्त्र का जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। 'जीवन' और 'दर्शन' एक ही उद्देश्य के दो परिणाम हैं। दोनों का चरम लक्ष्य एक ही है: परम श्रेय (निःश्रेयस) की खोज करना। इसी का सैद्धान्तिक रूप दर्शन है और व्यावहारिक रूप जीवन। जीवन की सर्वांगीणता के निर्माणक जो सूत्र तन्तु या तत्व हैं उन्हीं की व्याख्या करना दर्शन का अभिप्राय है। दार्शनिक दृष्टि से जीवन पर विचार करने की एक निजी पद्धति है, अपने विशेष नियम हैं। इन नियमों और पद्धतियों के माध्यम से जीवन का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करना ही दर्शन का ध्येय है।

इस विराट ब्रह्माण्ड के असंख्य, अद्भुत पदार्थों के समक्ष जीवन की स्थिति और सत्ता क्या है, एवं मनुष्य के इन रोना, हँसना, सोचना, विचारना, सुख-दुःख, पुण्य-पाप, जन्म-मरण आदि विभिन्न रूपों का रहस्य क्या है, इन्हीं जिज्ञासाओं को

लोकदर्शनशास्त्र का जन्म हुआ है और इन्हीं पर इसमें विचार किया गया है।

जिज्ञासा का अर्थ है ज्ञान की इच्छा (ज्ञातुंइच्छा)। यही ज्ञानेच्छा हमें जीवन के प्रति जगत के प्रति नये-नये अन्वेषणों, अनुसंधानों और आविष्कारों में प्रवृत्त करती है। इन नयी क्रियाओं एवं प्रवृत्तियों में हमें नया ज्ञान मिलता है; तथा दर्शन उपलब्ध होता है।

क्योंकि जीवन की मीमांसा करना ही दर्शन का एकमात्र उद्देश्य है, अतः जीवन से सम्बन्धित जितने भी आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक पदार्थ हैं उनका तात्त्विक विश्लेषण करना भी दर्शन का कार्य हो जाता है।

तात्त्विक दृष्टि से संसार के समस्त पदार्थों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है: सचेतन और अचेतन। इन द्विविध पदार्थों के दो भागों में विभक्त बाहरी स्वरूपों पर विचार करने वाले शास्त्र को विज्ञान और उनकी भीतरी सूक्ष्मताओं का अन्वेषण-परीक्षण करने वाले शास्त्र को दर्शन कहते हैं। तात्पर्य भेद से दर्शन और विज्ञान की अनेक कोटियाँ हैं।

मनोविज्ञान, भौतिक विज्ञान, शरीर विज्ञान, समाज विज्ञान और अन्यान्य विज्ञान जीवन तथा इसकी जन्मस्थली

एवं कर्मस्थली, इस सृष्टि की व्याख्या अपने अपने ढंग से एवं अपनी-अपनी विधि से करते हैं। इन सबकी अलग-अलग उपलब्धि जीवन के भिन्न-भिन्न पहलुओं या पक्षों का उद्घाटन करने तक सीमित है। दर्शन शास्त्र का एक उद्देश्य यह भी है कि उक्त विज्ञान-शास्त्रों में सामंजस्य स्थापित करके उन्हें एक सूत्र में ग्रंथित किया जाय। इस दृष्टि से दर्शन भी एक विज्ञान है।

दर्शनशास्त्र समस्त शास्त्रों या विद्याओं का सार, मूल तत्व या संग्राहक है। इसमें ब्रह्मविद्या, आत्मविद्या या पराविद्या (मेटाफिजिक या फिलासोफी प्रापर), अध्यात्मविद्या, चित्तविद्या या अन्तःकरण शास्त्र (साइकालोजी या दि साइंस ऑफ माइंड), तर्क या न्याय (लॉजिक या दि साइंस ऑफ रीजनिंग), आचारशास्त्र या धर्ममीमांसा (एथिक्स या दि साइंस ऑफ कांडक्ट) और सौन्दर्यशास्त्र या कलाशास्त्र (ईस्थेटिक्स या दि साइंस ऑफ आर्ट) आदि सभी विषयों का परिपूर्ण विश्लेषण-परीक्षण प्रस्तुत किया गया है। इस दृष्टि से भारतीय और यूरोपीय दर्शनों का परस्पर समन्वय भी देखने को मिलता है।

दर्शनशास्त्र के इसी सर्वसंग्रही स्वरूप को लक्ष्य करके

FEBRUARY
M T W T F S S
1 2
3 4 5 6 7 8 9
10 11 12 13 14 15 16
17 18 19 20 21 22 23
24 25 26 27 28

प्रौढ़ दार्शनिक, भारतरत्न डॉ० भगवानदास जी ने लिखा "दर्शन शास्त्र, आत्मविद्या, अध्यात्मविद्या, आन्वीक्षिकी, सब शास्त्रों का शास्त्र, सब विद्याओं का प्रदीप, सब व्यावहारिक सत्कर्मों का उपाय, दुष्कर्मों का अपाय और नैष्कर्म्य, अर्थात् अफलप्रेप्सु कर्म का साधक और इसी कारण से सब सद्धर्मों का आश्रय और अन्तत: समूल दु:ख से मोक्ष देनेवाला है; क्योंकि सब पदार्थों के मूल हेतु को, आत्मा के स्वभाव को, पुरुष की प्रकृति को बताता है; और आत्मा का, जीवात्मा का तथा दोनों की एकता का, तौहीद का, दर्शन कराता है।"

दर्शन विद्या की उत्पत्ति का प्रयोजन है दु:खसामान्य (अशेष दु:ख) की निवृत्ति और सुख-सामान्य (उत्तमसुख) की प्राप्ति। इसी अभिलाषा से दर्शन शास्त्र (शास्त्र सामान्य) की आवश्यकता हुई। विशेष-विशेष दु:खों की निवृत्ति और विशेष-विशेष सुख की प्राप्ति के लिए विशेष-विशेष (पृथक्-पृथक्) शास्त्रों एवं विद्याओं में उपाय बताये गये हैं, किन्तु दु:ख सामान्य की निवृत्ति और सुखसामान्य की उपलब्धि के लिए दर्शनशास्त्र ही एकमात्र

रूप है। 'दर्शन' उसका अभिधान इसीलिए हुआ कि वह सब शास्त्रों का संग्राहक (शास्त्र सामान्य) है, अर्थात् इसमें सब शास्त्रों का सार या तत्व निहित है।

संसार की प्रायः प्रत्येक वस्तु का अपना निश्चित प्रयोजन होता है। इसी निश्चित प्रयोजन की खोज करते-करते जो विशेष ज्ञान प्राप्त होता है उसी को वस्तु का यथार्थज्ञान कहा जाता है। इसी विशेष ज्ञान को जब क्रमबद्ध रूप में रखा जाता है तब उसको 'शास्त्र' कहा जाता है। शास्त्र अनेक हैं और वस्तुएँ भी विभिन्न हैं। ये नाना विध शास्त्र इन अनेक विध वस्तुओं के निश्चित प्रयोजनों को क्रमबद्ध व्याख्या प्रस्तुत करते हैं और विशेष-विशेष शास्त्रों के नाम से कहे जाते हैं। इन सभी

शास्त्रों का संग्राहक दर्शन शास्त्र है। अबोध सुख की प्राप्ति और अबोध दुःख की निवृत्ति ही इसका मुख्य प्रयोजन है।

यदि दर्शन का प्रयोजन दुःख की निवृत्ति और सुख की प्राप्ति है तो इसका यह अर्थ हुआ कि दुःखमय संसार को देखकर मनुष्य के मन में दर्शन के लिए जिज्ञासा हुई।

M	T	W	T	F	S	S
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28		

FEBRUARY

इसी दुःख की जिज्ञासा और सुख की लिप्सा ने दर्शन को जन्म दिया।

भारतीय ज्ञान-परम्परा का मूल उत्स वेद है। वेदों के ऋषि दिव्य-दृष्टि सम्पन्न थे। उन्होंने स्पष्ट और तत्व, दोनों के निसर्ग प्रवाह का ज्ञान प्राप्त किया। जीवधर्म के बन्धन में बंधे हुए इस विश्व की सद्गति के लिए वेदों के ऋषियों ने गम्भीरतापूर्वक विचार किया। उन्होंने पाया कि नाना नामरूप इस जगत की तह में एक ही कारण प्रच्छन्न रूप में विद्यमान है। वह है दुःख। इस दुःख से छुटकारा पाने का एक ही उपाय है ज्ञान, आत्मज्ञान।

इसी आत्मप्राप्ति या आत्मज्ञान के लिए देवर्षि नारद साधारण दुःखी मनुष्य की भाँति आत्मज्ञानी सनत्कुमार के पास आये और उनसे इस आत्मविद्या को जानने की प्रार्थना की, जिससे सब दुःखों का नाश होकर 'परम श्रेय की प्राप्ति होती है (श्रेय साधन प्राप्तव्य सनत्कुमार प्रसाद)।

'कठोपनिषद' की एक कथा में बालक नचिकेता मृत्युभय की जिज्ञासा के लिए ब्रह्मज्ञानी यमराज के पास गया और यमराज से वेदान्त विद्या आत्मविद्या तथा मोक्षशास्त्र का उपदेश सुनकर उसने अमरता प्राप्त की।

FEBRUARY MARCH APRIL

ऋषि याज्ञवल्क्य ने अपनी सहधर्मिणी मैत्रेयी को ब्रह्म पराविद्या (दर्शन) का ज्ञान दिया, जिससे अमरत्व प्राप्त होता है और संसार के समस्त दुःखों से छुटकारा मिल जाता है।

तथागत बुद्ध के अन्तःकरण में जीवन-मृत्यु के इस अबाध्य चक्र ने वैराग्य को जगाया। घर छोड़ते हुए पहली बार उन्होंने कहा, 'जीवन क्या है, मृत्यु क्या है, इससे कैसे छुटकारा पाया जा सकता है — जब तक मैं इस रहस्य का पता न लगा लूँगा तब तक कपिलवस्तु को न लौटूँगा।' (जन्ममरणयोः अदृष्टपारः न पुनरहं कपिलाह्वयं प्रवेष्टा।) बुद्ध ने दुःख को खोज निकाला और चार आर्य सत्यों में उसकी उत्पत्ति तथा निवृत्ति का व्याख्यान किया।

महावीर स्वामी के वैराग्य और परार्थ का उद्देश्य, संसारी जीवों को जन्म मरण तथा दुःख-बन्धन से छुटकारा दिलाकर मोक्ष का मार्ग बतलाना था। इसी मोक्षमार्ग की प्राप्ति के लिए उन्होंने सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् कर्मान्त और सम्यक् चारित्र्य का उपदेश किया।

न्यायदर्शन में बताया गया है कि प्रमाण, प्रमेय आदि सोलह पदार्थों का यथार्थ ज्ञान हो जाने पर

M	T	W	T	F	S	S
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28		

FEBRUARY

दुःख और उसके कारणों की परम्परा का समूल क्षय हो जाता है। यह सर्व दुःखक्षय ही अपवर्ग, मोक्ष या निःश्रेयस है। निःश्रेयस से अर्थात् जिससे बढ़कर श्रेयान् (सुखकर) पदार्थ कोई है ही नहीं।

वैशेषिक दर्शन में कहा गया है कि धर्म से सांसारिक अभ्युदय (भोग) और पारमार्थिक निःश्रेयस (मोक्ष) दोनों मिलते हैं। इस धर्म विशेष का यथार्थ ज्ञान हो जाने पर तत्व ज्ञान और तब सर्व दुःख विनिर्मुक्त मोक्ष की प्राप्ति होती है।

सांख्य में त्रिविध दुःखों (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक) की सर्वथा निवृत्ति को ही परम पुरुषार्थ कहा गया है। इन्ही दुःखों के उन्मूलन के लिए वहाँ सब से पहले जिज्ञासा की गयी है। आगे बताया गया है कि इसी यथार्थ ज्ञान से अपवर्ग की प्राप्ति होती है।

योगदर्शन में साधक को अपनी मुक्तावस्था या जीवावस्था के शोधन के लिए उपाय बताये गये हैं। वहाँ बताया गया है कि जिसको संसारी मनुष्य सुख कहता है, विवेकी के लिए वह भी दुःख ही है और यह दुःख अनन्त है; और इनके होने का कारण है द्रष्टा व दृश्य या पुरुष-प्रकृति का संयोग। इस संयोग

M	T	W	T	F	S	S
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28	29	30	31		

FEBRUARY

का कारण मिथ्या ज्ञान या अविद्या है, जिसको तत्व ज्ञान से मिटाया जा सकता है।

पूर्व मीमांसा का 'स्व' ज्ञान ही मोक्ष है। आत्मा स्वरूप निरतिशय सुखमय है, जो अपने को सब में और सबको अपने में देखता है और इसी क्रम दृष्टि से सदा आचरण करता है, उसको ही स्व, मोक्ष, अपवर्ग की प्राप्ति होती है।

वेदान्त में आत्मज्ञान या यथार्थ ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति बताई गयी है। यह अवस्था ऐसी है जिसमें समस्त दु:खों का अन्त और परम शान्ति की उपलब्धि होती है।

कुछ विचारकों ने दर्शन का एक प्रयोजन लोक-सेवा तथा लोक सहायता (ईश्वर भक्ति, सत्सेवा सदुपदेश) आदि के रूप में भी प्रकाशित किया। इन्होंने बताया कि व्यावहारिक दृष्टि से दर्शन का यही प्रयोजन है।